International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

जेंडर का सवाल और वर्चस्व की राजनीति

डॉ. दीपक सिंह

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)

सारांश

इस शोध-पत्र में स्त्री की सामाजिक स्थिति के निर्धारण में पितृसत्ता के वर्चस्वशाली विचार की भूमिका का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है | आज यह बात स्थापित हो चुकी है कि जेंडर एक सामाजिक निर्मिति है, इसके निर्माण के पीछे पितृसत्ता का वर्चस्ववादी विचार सदियों से कार्य कर रहा है यहाँ तक कि विज्ञान भी इसमें सहयोगी भूमिका निभाता आया है | यौनिकता पर नियंत्रण का विचार इतना इतना वर्चस्वशाली है कि आज 21 वीं शदी में भी स्त्री या अन्य स्त्री-पुरुष के दायरे से इतर यौन रुझान रखने वाले लोगों के रहन-सहन, कपड़ा पहनने के तरीके, खान-पान आदि पर दुनिया भर में जंग छिड़ी हुई है | संवैधानिक अधिकारों की गारंटी सामाजिक बंधन के आगे असहाय नजर आती है | लेकिन इसी के साथ सकारात्मक बात यह भी है कि नारीवादी आंदोलनों और के आंदोलनों ने समाज के एक हिस्से की मानसिकता को बदलने में कामयाबी पाई है | दुनिया के कई देशों में स्त्री सहित LGBTQ समूह की स्वतंत्रता का स्तर बढ़ा है, इसकी प्रतिक्रिया भी हुई है मध्य एशिया, अफ्रीका के कई देशों में नारी और LGBTQ समूह की स्वतंत्रता के स्तर में गिरावट आई है उदहारण के रूप में हम ईरान, अफगानिस्तान आदि को देख सकते हैं | कुल मिलाकर यह अभी एक लम्बी चलने वाली प्रक्रिया है राजसत्ता और धर्मसत्ता का मजबूत गठजोड़ इसके रास्ते का सबसे बड़ा रोड़ा है |

बीज शब्द- LGBTQ, सीमोन, महादेवी वर्मा, जेंडर, ट्रांसजेंडर, समलैंगिकता, हार्मोन

सीमोन का कथन है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है' इस कथन की आज तक न जाने कितनी व्याख्याएं की गई हैं इस दुनिया में जब भी कोई बच्चा पैदा होता है तो वह जैविक रूप से मेल, फीमेल या ट्रांसजेंडर के रूप में होता है लेकिन जन्म के पश्चात समाज द्वारा स्त्री या पुरुष के लिए बनाई गई सांस्कृतिक पहचान के अनुसार उसका पालन-पोषण किया जाता है | बच्चे के प्रारंभिक खेल से ही यह विभाजन शुरू कर दिया जाता है जैसे लड़की है तो गुडिया-गुड्डे का खेल खेलेगी या ज्यादातर ऐसे खेल खेलेगी जो घर के भीतर रहकर खेले जाते हैं इसके ठीक विपरीत लड़कों के खेल बाहर खेले जाने वाले होते हैं इसी के साथ-साथ गुणों का विभाजन करना भी शुरू कर दिया जाता है जैसे कोमलता, दया, करुणा, लज्जा आदि लड़कियों के गुण हैं तथा कठोरता, वीरता, निडरता आदि लड़कों के गुण हैं |

स्त्री के साथ उन्हीं गुणों को चस्पा किया गया जो या तो उन्हें कमजोर या दोयम दर्जे का साबित करते हैं या उन्हें त्याग, सहिष्णुता की देवी के रूप में स्थापित करते हैं | वीरता पुरुष का ही गुण है या बात हमारे दिलो -दिमाग पर इस कदर हावी है कि एक महिला कवि सुभद्राकुमारी चौहान जब झाँसी की रानी पर कविता लिखती हैं कहती हैं 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' मतलब यह बात हमारे दिमाग में बैठी हुई है कि लड़ना मर्दाना काम है तो अगर कोई स्त्री भी वीरता का प्रदर्शन करती है तो उसमें निश्चय ही पुरुषों वाले कुछ गुण होंगे | इस तरह की छवि गढ़ने में भारतीय सिनेमा भी अपनी भूमिका बखूबी निभाता है जैसे कि फिल्म मर्द का डायलाग 'मर्द को दर्द नहीं होता' इस तरह के विभाजन हमारे संवाद द्वारा गढ़ी गई उसी छवि से बनते हैं जो पुरुष को ताकतवर रूप में प्रदर्शित करते हैं और इसका

असर न केवल महिलाओं पर बल्कि पुरुषों पर भी देखा जा सकता है | यह विभाजन सिर्फ स्त्री के लिए त्रासद नहीं है बल्कि तमाम संवेदनशील पुरुष भी इसका शिकार होते हैं वे अपने तकलीफ या दर्द को इसलिए प्रकट नहीं कर पाते कि समाज क्या कहेगा ? इसी तरह हमारे समाज में जब किसी को कमजोर या खास तौर से कायर कहना हो तो उसे चूड़ियाँ भेंट की जाती हैं | मतलब चूड़ी स्त्री का गहना नहीं उसके कमजोर या कायर होने की निशानी है जो समाज के अवचेतन में सदियों से पैवस्त है |

इसी तरह के तमाम उदहारण हमरे सामने मौजूद हैं जो सीमोन के कथन को प्रमाणित करते हैं | इस बात पर विभिन्न नारीवादियों ने अलग-अलग पहलू से विचार किया है | सीमोन से भी पहले महादेवी वर्मा अपने निबंध श्रंखला की कड़ियाँ में स्त्री की ताक़त उसकी वीरता को बड़े पुरजोर तरीके से स्थापित करती हैं | आज विभिन्न साहसिक कार्य महिलाओं द्वारा किये जा रहे हैं इस पर महादेवी की टिपण्णी देखने योग्य है "पर्वतारोहण का कार्य अब तक केवल पुरुषों में विशेष साहसियों को ही आकर्षित करता था | आज हिम से ढके पर्वत शिखरों के अभियान कोमल-कांत शरीर वाली युवतियों का मानो मनोरंजन हो गया है | प्रतिवर्ष पर्वतारोहण में प्रशिक्षित महिला दलों का गठन होता है और ऊँचे पर्वत शिखर स्त्रियों के चरण-चिन्हों से चिह्नित होते हैं | भविष्य में साहसिक कार्यों के अधिकारी केवल पुरुष न माने जायेंगे |"1 हमारी पितृसत्ता ने महिलाओं और पुरूषों के काम भी बांटे जैसे घर में खाना बनाना, झाड़ू-पोछा आदि महिलाओं के जिम्मे आये और बाहर किये जाने वाले कार्य जिसमें अर्थ सीधे जुड़ा हुआ हो पुरूषों के जिम्मे आये | यहाँ तक कि आज जब बड़ी संख्या में महिलाएं भी घर के बाहर काम-काज कर रहीं हैं तब भी घर के भीतर के ज्यादातर काम उन्हीं के जिम्मे हैं | कामों के मामले में एक दिलचस्प पहलू यह भी है कि यह सभी काम तभी तक महिलाओं के काम कहे जाते रहे जब तक यह हुनर बाजार से जुड़कर कमाऊ नहीं बन गए | घर के अन्दर खाना पकाना, कपडे धोना आदि महत्वहीन कार्य के रूप में देखे जाते रहे लेकिन जैसे ही ये घर के बाहर होटलों, लांड्री आदि में पहुचे महत्वपूर्ण हो उठे बड़े-बड़े शेफ़ आपको पुरुष मिलेंगे | जे.एन.यू. की प्रोफ़ेसर व प्रसिद्ध नारीवादी विचारक निवेदिता मेनन लिखती हैं "जब कोई विचार वर्चस्वशाली हो जाता है तो वह सामान्य-बोध बन जाता है और फिर उस विचार से पीड़ित होने वाले लोग ही उसे आत्मसात कर बैठते हैं |"2 हमारे समाज में एक मुहावरा खूब जोर शोर से दुहराया जाता है कि 'स्त्री ही स्त्री की दुश्मन होती है' इसके उदहारण के रूप में परिवार के भीतर नव-वधुओं के साथ होने होने वाले शोषण और हिंसा की घटनाओं को दिखाया जाता है | प्रत्यक्षतः यह बात प्रमाणिक प्रतीत होती है जैसे यदि हम दहेज़ उत्पीडन की बात दर्ज करें तो थानों में दर्ज होने वाले मुकदमों में पति, ससुर आदि के साथ सास,ननद का भी नाम जुड़ा रहता है | अब यदि यथार्थ को समझना है तो हमें उस प्रक्रिया को समझना होगा जिसकी तरफ मेनन इशारा कर रही हैं | इस प्रक्रिया को समझने में एक सामान्य सा सवाल बड़ी भूमिका निभा सकता है और वह यह कि समाज की नीतियों के निर्माता कौन हैं? क्या महिलाएं हैं ? या नीति निर्माण में महिलाओं की कितनी भागीदारी है ? इसी के साथ समाज की रीति,नीति, निभाने व इज्जत सम्मान की रक्षा का अधिकतम भार क्या महिलाओं ने स्वयं अपने लिए निर्धारित किया है ? यदि इसी बात को एक उदाहरण से समझने का प्रयास करें तो हम देखते हैं, भूमि हीनता, गरीबी, छुआछूत सहते हुए समाज का एक बड़ा हिस्सा इसका कोई प्रतिरोध करता नजर नहीं आता | बल्कि उसने इसे इश्वर निर्मित, पूर्वजन्म के कर्म का फल मान आत्मसात कर रखा है क्यों ? क्योंकि पूर्वजन्म, कर्मफल आदि वर्चस्वशाली विचार हैं जिनकी रचना वर्चस्वशाली वर्ग ने की है ठीक यही स्थिति महिलाओं के साथ है | इसके साथ यह बात भी सच है कि बाबा साहब अम्बेडकर की प्रेरणा से शुरू हुए दलित आन्दोलन और पूरी दुनिया में चल रहे महिला आन्दोलनों ने इन वर्चस्वशाली विचारों के खिलाफ चुनौती पेश की है | लेकिन वर्चस्वशाली विचार जिस तबके से आते हैं वे नित नए तरीके आजमाते हैं यहाँ तक कि उत्पीड़ितों के आन्दोलन को भटकाने के पूजी समर्थित बहुत से औजारों का प्रयोग करते हैं जैसे कि बाजार को दलित और स्त्री मुक्ति का अगुआ बताना |

मुद्दे को आगे बढ़ाती हुई मेनन लिखती हैं "चूंकि मौजूदा समय में मानवीय देह की सबसे वर्चस्वी समझ यह कहती है कि प्रत्येक देह स्पष्ट और असंदिग्ध रूप से पुल्लिंग या स्त्रीलिंग होती है इसलिए मानवीय देह के जो प्रकार इस वर्गीकरण में नहीं अट पाते उन्हें किसी न किसी तरह बीमार या असमान्य घोषित कर दिया जाता है |"3 जैसे कि LGBTQ (lesbian, gay, bisexual, transgender and queer) समूह के लोगों को आज भी हमारा समाज सहजता से स्वीकार नहीं कर पाता |Andrew R. Flores का शोध जो 'SOCIAL ACCEPTANCE OF LGBTI PEOPLE IN 175 COUNTRIES AND LOCATIONS 1981 to 2020' नाम से प्रकाशित है, अनुसार वैश्विक स्तर पर LGBTQ समूह की सामाजिक स्वीकार्यता बढ़ी है लेकिन यह ज्यादातर पश्चिमी देशों में है एशियाई अफ्रीकी आदि अपेक्षाकृत पिछड़े देशों में या तो यह स्थिर है या इसमें गिरावट देखी गई है |

"Of the 175 countries and locations examined, 32 percent experienced an increase in acceptance. This translates to: • 56 of 175 countries and locations experienced increases in acceptance since 1980. • 57 countries and locations experienced a decline • 62 countries and locations experienced no change"4

इस सूची में 5.28 अंक के साथ भारत का स्थान 51 वा है | यदि भारत की बात करें तो इस शोध के अनुसार स्थिति थोड़ी सकारात्मक दिखाई पड़ती है | समाज की सोच में कुछ परिवर्तन आया है लेकिन अभी भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है | संयुक्त राष्ट्र की बारह संस्थाओं ने 2015 में एक बयान जारी कर LGBTQ समूह की सामाजिक स्थिति पर अपनी चिंता कुछ इस तरह व्यक्त की है "Discrimination and violence contribute to the marginalization of LGBTI people and their vulnerability to ill health including HIV infection, yet they face denial of care, discriminatory attitudes and pathologization in medical and other settings... The exclusion of LGBTI people from the design, implementation and monitoring of laws and policies that affect them perpetuates their social and economic marginalization."5

विज्ञान के भीतर भी इस मुद्दे पर लगातार शोध, सर्वेक्षण होते रहे हैं जिसके फलस्वरूप आज यह बात प्रमाणिक रूप से कही जाती है कि समलैंगिगता या दूसरे यौन रुझान कोई बीमारी नहीं हैं बल्कि यह पूरी तरह बायोलॉजिकल है | भारत में समलैंगिकता को गैर जमानती अपराध की श्रेणी में रखा गया था जिसमें दस साल की सजा का प्रावधान था, एक लम्बी लड़ाई के बाद 2018 में सुप्रीम कोर्ट ने समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से हटा दिया लेकिन जहाँ तक इनके आपस में विवाह की बात है कोर्ट ने इसे मान्यता नहीं दी |

इस बात को यहाँ रेखांकित करने का उद्देश्य इस बात को स्पष्ट करना है कि बर्चस्वशाली विचार कैसे लोकतान्त्रिक संस्थाओं, राजनीतिक, सामाजिक संस्थाओं आदि को प्रभावित करते हैं | स्त्री को एक स्वतंत्र ईकाई न मानने की पीछे यही बर्चस्व की राजनीति काम करती है | वैज्ञानिक तथ्य भी यहाँ अप्रभावी हो जाते हैं जैसे यदि हम खेलों की दुनिया में देखें तो पाएंगे कि वहां बिना किसी वैज्ञानिक आधार के यह मान लिया गया है कि स्त्री पुरुष से कमजोर है | विभिन्न खेलों में जेंडर परीक्षण किये जाते हैं | यह जेंडर परीक्षण महिलाओं के खेलों में यह तय करने के लिए किये जाते कि इनमें भाग लेने वाली महिलाओं में कोई पुरुष के गुणों से युक्त तो नहीं है ,मतलब कि स्त्री हमेशा पुरुष से कमजोर ही होगी | इस तथ्य से जुड़ी बेहद महत्वपूर्ण जानकारी देते हुए मेनन लिखती हैं – "सन 2000 के ओलम्पिक खेलों में जेंडर के सत्यापन से सम्बंधित परीक्षण इसलिए स्थगित कर दिए गए क्योंकि एक के बाद एक कई सबूतों से यह साफ़ होता जा रहा था कि क्रोमोसोम की अप्रारुपिक भिन्नताएं इतनी आमफहम होती हैं कि केवल उनके पैटर्न के आधार पर स्त्रीत्व या पुरुषत्व का निर्णय नहीं किया जा सकता |"6 खेलों के मामले में इस तरह के परीक्षण को लेकर मेनन एक सवाल खडा करती हैं –

"आखिर वे प्रतिस्पर्धी प्रतियोगिताएं कहाँ तक उचित हैं जिनमें केवल पुरुष की देह को कुछ इस तरह का मानक मान लिया जाता है कि पुरुष जैसा डील-डौल रखना फायदे का सौदा बन जाता है ? इससे तो यही सार्वभौम समझ परिलक्षित होती है कि पुरुष के साथ जुड़ा कोई गुण स्वतः ही श्रेष्ठतर होता है, इसलिए उसे सभी मनुष्यों के लिए एक मानक की तरह देखा जाना चाहिए | महिलायें चाहे जिस रूप में भिन्न हों, उनकी यह भिन्नता केवल भिन्नता नहीं होती बल्कि एक कमतर या श्रेष्ठतर किस्म की भिन्नता मानी जाती है |"7

यह मामला केवल स्त्री-पुरुष की शारीरिक बनावट तक ही सीमित है, किसी भी खेल प्रतियोगिता में प्रतिभागियों के बीच उनकी अन्य किसी प्रकार की शारीरिक बनावट को लेकर किसी तरह के कोई विभेद नहीं किये जाते | इस सम्बन्ध में निवेदिता जी का एक लंबा उदहारण द्रष्टव्य है –"यहाँ दूसरा सवाल ज्यादा बुनियादी महत्व का है और जो इस तथ्य से निकलता है कि खेलों में सभी प्रकार के प्राकृतिक सुविधाप्रद गुणों को अवैध करार नहीं दिया जाता | उदाहरण के लिए बास्केटबाल में लंबा कद फायदेमंद माना जाता है,जबकि अमेरिका के ओलम्पिक पदक विजेता तैराक माइकल फेल्प्स का विशेष शारीरिक गठन जिसके चलते वह सामान्य पुरुषों की तुलना में पानी को ज्यादा आसानी से चीर लेते हैं -एक बीमारी मर्फान ग्रंथि का परिणाम माना जाता है | अलग-अलग जातीय समुदायों में शारीरिक गठन के लक्षण जैसे लम्बाई या देहयष्टि आदि भिन्न होते हैं | इसलिए वास्तव में मुद्दे की बात यह है कि खेल प्रतियोगिताओं में प्रतिस्पर्धियों को उनके शारीरिक लक्षणों के तुलनात्मक आधार पर कभी नहीं चुना जाता- बराबरी के मैदान जैसी कोई चीज होती ही नहीं ! खेल में जब पुरुष एक दूसरे से मुकाबला करते हैं तो उनके बीच शारीरिक गठन,प्रशिक्षण के स्तर और लम्बाई व दमखम जैसे प्राकृतिक गुणों का अंतर पहले से मौजूद रहता था | तो क्या ऐसे में यह पूछना जरूरी नहीं हो जाता कि फिर भिन्नता का यह मानक जेंडर की कल्पित दो-ध्रुवीयता पर आकर ही क्यों अटक जाता है |'' 8

पिछले दिनों आई फिल्म 'रश्मि-राकेट' इस तथ्य को बहुत खूबसूरती से दर्शाती है कि जेंडर परीक्षण का यह खेल कितने लोगों की जिंदगियों को तबाह कर देता है | फिल्म रश्मि नामक लड़की की कहानी के बहाने खेलों की दुनिया के इस भेद-भाव को रेखांकित करती है | रश्मि का पालन-पोषण शुरू से एक लड़के की तरह किया गया था, उसके पिता ने उससे उन खेलों में भागीदारी करवाई जो कि सामान्यतः लड़कियों के लिए निषिद्ध समझे जाते थे | बाद में जब वह भारतीय टीम के सदस्य के रूप में अंतराष्ट्रीय प्रतियोगिता में भाग लेती है और एक के बाद एक तीन मैडल जीत चुकी होती है तब साजिशन उसका जेंडर परीक्षण करा कर उसे आगे की प्रतियोगिता के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाता है | बाद में इसके लिए वह लम्बी कानूनी लड़ाई लड़ कर अपने आप को साबित करती है | इस फिल्म से थोड़ा हटकर अगर हम इस घटना का परीक्षण करें तो पाते हैं कि खेलों में जेंडर परीक्षण के दौरान टेस्टोस्टोरान हारमोन का लेवल जांचा जाता है और यदि किसी महिला में यह लेवल बढ़ा हुआ पाया जाता है तो उसे जेंडर परीक्षण में फेल साबित कर दिया जाता है |

यहाँ एक बड़ा सवाल यह है कि जब पुरुषों के बीच उनकी जन्मजात प्रतिभा,शारीरिक गुण या बनावट के आधार पर कोई भेदभाव नहीं नहीं किया जाता तो फिर महिलाओं के मामले में यह भेदभाव क्यों ? इस तरह का भेदभाव सिर्फ इसलिए है कि हमने मान लिया है कि पुरुष ज्यादा ताकतवर है और स्त्री कमजोर | अगर किसी के शरीर में प्राकृतिक रूप से भी टेस्टोस्टोरान का लेवल बढ़ा हुआ है तो उस स्त्री को पुरुष की कैटगरी में रखा जाएगा | खेलों की दुनिया का एक मजेदार उदाहरण प्रस्तुत करते हुए निवेदिता लिखती हैं-1936 के ओलम्पिक खेलों में पोलैंड की धावक स्टेला वाल्श को अमेरिकी धावक हेलेन स्टीफंस ने पछाड़ दिया | उस समय वाल्श दुनिया की सबसे तेज धावक मानी जातीं थीं, इसलिए उस स्पर्धा के बाद पोलैंड के एक पत्रकार ने यह कहकर विवाद खडा कर दिया कि कोई महिला इतना तेज नहीं दौड़ सकती | इसके बाद ओलम्पिक के अधिकारियों को हेलेन का 'लिंग परीक्षण' जैसा कुछ करना पडा | परीक्षण से यह बात साबित हो गई कि हेलेन महिला ही थीं | लेकिन चावालीस साल बाद स्टेला

वाल्श की एक पार्किंग स्थल पर गोली मारकर हत्या कर दी गई | xxxxxxxxx जब स्टेला की मृत देह की आटोप्सी की गई तो पता चला कि वह तो दरअसल 'पुरुष' थीं!"9

इसी तरह की एक और घटना का वे जिक्र करती हैं जिसमें हिटलर के संगठन के एक युवा सदस्य ने महिला बनकर महिलाओं की ऊंची कूद में हिस्सा लिया और तीसरे स्थान पर आया था | इन उदाहरणों से यह बात तो स्पष्टतः प्रमाणित हो जाती है कि केवल पुरुष होना ही तेज दौड़ने या ऊंचे कूदने की योग्यता नहीं होती | नए अध्ययनों से एक और तथ्य सामने आया है कि हार्मोन का स्राव भी इस बात पर निर्भर करता है कि कोई भी मनुष्य किस तरह के कामों में संलग्न है | नारीवादी वैज्ञानिक इस बात को स्वीकार करते हैं कि विज्ञान की व्याख्या भी सभ्यता तथा संस्कृति के आधार पर ही की जाती रही है | जैसे कि सक्रिय शुक्राणु और अक्रिय डिम्ब की पारिकल्पना, इस तरह से की गई है कि यदि शुक्राणु सक्रिय न हो तो डिम्ब का कोई महत्व नहीं है बल्कि वह मर जाता है | "जीव विज्ञान की एक मानक पुस्तक में लिखा गया है कि, गर्भाशय से छूटने के बाद 'अगर शुक्राणु उसकी हिफाजत न करे' तो डिम्ब मर जाता है | मार्टिन कहती हैं कि 'यह देखना बेहद दिलचस्प है कि डिम्ब किस तरह स्ट्रेन व्यवहार करता है और शुक्राणु पूरी मर्दानगी के साथ सामने आता है |"10 जबकि नया शोध यह कहता है कि शुक्राणु अपनी गति से आगे बढ़ ही नहीं सकता डिम्ब की उपरी परत का आकर्षण उसे चुम्बक की तरह अपनी और खींचता है |

तो यदि हम निष्कर्ष के रूप में देखें तो आज यह बात स्थापित हो चुकी है कि जेंडर एक सामाजिक निर्मिति है, इसके निर्माण के पीछे पितृसत्ता का वर्चस्ववादी विचार सदियों से कार्य कर रहा है यहाँ तक कि विज्ञान भी इसमें सहयोगी भूमिका निभाता आया है | यौनिकता पर नियंत्रण का विचार इतना इतना वर्चस्वशाली है कि आज 21 वीं शदी में भी स्त्री या अन्य स्त्री-पुरुष के दायरे से इतर यौन रुझान रखने वाले लोगों के रहन-सहन, कपड़ा पहनने के तरीके, खान-पान आदि पर दुनिया भर में जंग छिड़ी हुई है | संवैधानिक अधिकारों की गारंटी सामाजिक बंधन के आगे असहाय नजर आती है | लेकिन इसी के साथ सकारात्मक बात यह भी है कि नारीवादी आंदोलनों और के आंदोलनों ने समाज के एक हिस्से की मानसिकता को बदलने में कामयाबी पाई है | दुनिया के कई देशों में स्त्री सहित LGBTQ समूह की स्वतंत्रता का स्तर बढ़ा है, इसकी प्रतिक्रिया भी हुई है मध्य एशिया, अफ्रीका के कई देशों में नारी और LGBTQ समूह की स्वतंत्रता के स्तर में गिरावट आई है उदहारण के रूप में हम ईरान, अफगानिस्तान आदि को देख सकते हैं | कुल मिलाकर यह अभी एक लम्बी चलने वाली प्रक्रिया है राजसत्ता और धर्मसत्ता का मजबूत गठजोड़ इसके रास्ते का सबसे बड़ा रोड़ा है |

सन्दर्भ सूची :-

1. संपादक-जैन निर्मला : महादेवी साहित्य खण्ड-4, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ -331-332
2. मेनन निवेदिता : नारीवादी निगाह से, (हिन्दी अनुवाद- नरेश गोस्वामी) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2021, पृष्ठ – 72
3. वही, पृष्ठ – 72
4. Flores Andrew R.: 'SOCIAL ACCEPTANCE OF LGBTI PEOPLE IN 175 COUNTRIES AND LOCATIONS 1981 to 2020' https://williamsinstitute.law.ucla.edu/wp-content/uploads/Global-Acceptance-Index-LGBTI-Nov-2021.pdf
5. https://www.ohchr.org/en/special-procedures/ie-sexual-orientation-and- gender-identity/effective-inclusion-lgbt-persons
6. मेनन निवेदिता : नारीवादी निगाह से, (हिन्दी अनुवाद- नरेश गोस्वामी) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2021, पृष्ठ – 80

7. वही, पृष्ठ –82
8. वही, पृष्ठ –82-83
9. वही, पृष्ठ –83
10. वही, पृष्ठ –84-85